लोक साहित्य और प्रतिरोध

(शोध आलेख)

लेखिका .

डॉ. दीपिका आर परमार

गांधीनगर, गुजरात

Email: ---------------

सारांश(Abstract):– *लोक साहित्य का कोई एक रचयिता नहीं होता। ये सामूहिकता की उपज होती है। लोक साहित्य सामूहिक चेतना को अभिव्यक्त करता है। लोक साहित्य में पायी जाने वाली मिठास श्रम की मिठास है और इसका सौन्दर्य श्रम का सौन्दर्य है। लोक साहित्य प्रायः समाज के वंचित, उपेक्षित व दमित तबकों की पीड़ा, सुख दुःख, उल्लास, तीज-त्यौहार, रीति-रिवाज, परम्परा व संस्कृति को अभिव्यक्त करता है। दरअसल लोकसाहित्य अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण अस्मिता विमर्शों व सबाल्टर्न विमर्शों द्वारा इतिहास को उसके वास्तविक स्वरूप में समझने के लिए सबसे ज्यादा प्रयोग किया जा रहा है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचार में "लोक शब्द का अर्थ ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समस्त जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत, रूचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल तथा कृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते है।*

keywords : लोकसाहित्य, दरअसल, लोकभाषा, आलोचना

दरअसल जो इतिहास हमें पढ़ाया जाता है या साहित्य के नाम पर जिस साहित्य को हम पढ़ते रहे हैं उससे स्त्री दलित आदिवासियों का स्वर हमें बहुत सुनाई नहीं पड़ता। जहाँ कही यह आये भी है या इनका चित्रण हुआ है वहाँ ये लेखकीय कृपा पर निर्भर रहे हैं। वह मूलतः लेखक की अपनी आवाज़ है जो प्रायः सवर्ण रहा है व वर्चस्वसाली तबके से आता रहा है। स्त्री या दलित को लिखने पढ़ने का अधिकार न होने से उनकी अपनी आवाज या सोच क्या रही है इसका कोई पुखता या विश्वसनीय प्रमाण हमें शिष्ट साहित्य या वर्चस्वशाली इतिहास में नहीं मिलता। दरअसल स्त्री व दलित का अपना कोई स्पेस नही था न ही अपना कोई सरप्लस समय था। पति या स्वामी से ही इनकी दिनचर्या तय होती थी और उनका कथन इनके लिए ब्रह्मवाक्य। इस ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने इन वर्गों या तबको को समस्त अधिकारों से वंचित कर रखा था। ऐसे में इन वर्गों ने अपनी समस्त पीड़ा इतिहास कुंठा, खुशी या प्रतिरोध का लोकसाहित्य के माध्यम से व्यक्त किया। लोकसाहित्य में इन्होंने अपने इतिहास को वा अपने आप को सुरक्षित रखा। फसल काटने के समय गाये जाने वाले, चक्की पीसने समय, निराई गुड़ाई के समय, शादी ब्याह के समय, तीज त्यौहार उत्सव में गाये जाने वाले गीतों में इन्होंने अपने आपको अभिव्यक्त किया है। तत्कालीन व्यवस्था पर सवाल उठाये है। वा अपनी पीड़ा को व्यक्त किया है। लोक साहित्य ऐसी जगह है जिसे उपेक्षित तबको या लोक ने खुद निर्मित किया है अपने लिए। एक सीमा तक ही सही अपने प्रतिरोध को वहाँ दर्ज किया है।

यह अकारण नहीं है कि मध्यकाल के तमाम प्रतिरोधी कवि या संत कवि लोकभाषाओं में लिखते है। बोलियों में लिखते हैं। इसके पीछे कारण यह है कि जहाँ आमजन भी इन्हें समझ सकता वही प्रतिरोध की परम्परा भी इन बोलियों से प्राप्त होती। इनमें नयापन होता। लोकभाषा व लोकसाहित्य समय-समय पर खुद को नया करता चलता है इसलिए एक-एक लोकगीत व एक-एक लोककथा के कई कई पाठ मिलते हैं। यह अपने आप को जड़ता में नही बांधता बल्कि सतत प्रवाहमान रखता है। शायद यही कारण रहा कि जब हिन्दी कविता में शाब्दिक पच्चीकारी ज्यादा होने लगी, या वह टेक्निक की चीज बनने लगी तब हिन्दी कवियों ने अपने आपको लोक की तरफ मोड़ा या हिन्दी भाषा ने खुद को बोलियों की तरफ। यहाँ तक की अपने प्रतीक रूपक तक लोक से लिए। 'कलगी बाजरे की' इसका उदाहरण है। लोक प्रतिरोधी रहा है अपने ढंग से हमेशा से। बड़े-बड़े महाकवियों की रचनाओं तक में प्रतिरोध हमेशा लोग से ही निर्मित होता हुआ दिखता हैं। तुलसी के 'रामचरितमानस' में राम को वन जाता हुआ देखकर अयोध्या के महलो राजा या राजनीति पर सवाल ग्राम वधूएँ खड़ा करती हैं। नर अयोध्या का शिष्ट वर्ग न ही प्रतिरोध करता है और न ही सवाल खड़े करता। लोक को आज हम भले ही किसी अन्य रूप में समझें पर तुलसीदास के यहाँ यह समूची मानवता के लिए प्रयुक्त हुआ है। विचारणीय है कि आखिर वो कौन सी चीज है जिसने लोकबोली या साहित्य को इतनी ताकत दी कि वो खुलकर सत्ता का वर्चस्वशाली तबकों का विरोध कर सके। आज जबकि इस्लामी कट्टरवाद एक बड़ी समस्या है और बड़े से बड़ा बुद्धिजीवी धर्मनिरपेक्षता के नाम पर इसकी आलोचना करने से बच रहा तब अनायास ही जायसी याद आते जिन्होंने सत्ता के इस्लाम को कहा था धू-धू कर जलता हुआ चितौर नगर इस्लाम है ऐसा उन्होंने लिखा। आशय यह है कि अगर इस्लाम का मतलब 'अल्लाउद्दीन का इस्लाम' है तो उसकी परिणिति यही है। इतना ही नहीं उन्होंने यह भी लिखा कि 'बिधना के मारग है तेते सरगनरवत तन रोवां जेते'। यानि ईश्वर की प्राप्ति के मार्ग है जबकि इस्लाम निश्चित संख्या में ही मार्ग बताता। नमाज ज़कात तौफिक रोज़ा और हज। इसके अलावा और कोई मार्ग नहीं। जबकि मध्यकाल में जायसी इसकी आलोचना कर रहे थे। वो ताकत उन्हें लोक या लोकभाषा से प्राप्त हुई थी। राजसत्ता या पितृसत्ता के प्रति मीरा का पूरा प्रतिरोध लोकभाषा में ही हैं। कबीर हो या अन्य निगुर्ण संत लोक या लोकभाषा से ही उन्हें प्रतिरोध की प्रेरणा और जमीन मिली। दरअसल लोकसाहित्य ने कई बार शिष्ट साहित्य को ठीक से प्रभावित किया है। वर्तमान में अगर हम प्रसिद्ध कवि 'राजेश जोशी' की कविता संरचना पर ध्यान दे तो हम यह प्रभाव स्पष्ट तौर पर लक्षित कर सकते है। उनकी प्रसिद्ध कविता 'मारे जाएँगें' में बार-बार मारे जाऐंगे की आवृत्ति मूल रूप से लोकगीतों की संरचना से प्रभावित है जिसमें आवृत्ति का स्थान महत्वपूर्ण है। इसके अलावा उनके यहाँ लोक के कई शब्द बार-बार दिखते हैं। वरिष्ठ युवा कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव ने तो अपनी बहुचर्चित वा प्रसिद्ध कविता 'सोनचिरइ' लोक कथा का आधार बना कर ही लिखी है। यह कविता स्त्री पीड़ा का जहाँ मार्मिक आखयान है वहीं स्त्री शक्ति से भी हमें रूबरू कराती है। यह भी महत्वपूर्ण है कि आज के कई कवि बार-बार गाँव की तरफ लौटते है। यहाँ तक कि वरिष्ठ कवि केदारनाथ सिंह का मन अपने गाँव में ही बसता। हकीकत यह है कि स्मृतियाँ गाँवों में ही होती। शहरों में स्मृतियाँ बची कहाँ। लोक की सामूहिकता की स्मृति को बचायें रखती वह इतिहास परम्परा को अपने हिसाब से नोट करता संरक्षित करता और अगली पीढ़ी को हस्तांतरित करता। इसमें पेड़, पौधे, पशु-पक्षी, चेतन-अचेतन सब हिस्सेदार होते। वह सबको अपने भीतर सहेजता। सबको उचित जगह देता। किस्सागोई, लोकोक्तियों, महावरों, कथाओं आदि में अपने समय का सच व्यक्त करताहजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसीलिए आलोचना में इन चीजों के अध्ययन को जरूरी माना। अगर यह लोक में प्रचलित था कि नेहरू की कोट लंदन में धुलता तो धुलता भले न हो पर इतनी सच्चाई जरूर की वो चाहते तो धुलवा तो सकते ही थे। यही लोक शैली है कि वो सबके साथ न्याय करता।

----------00--------

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रतिनिधि कविताएँ (मारे जायेंगे) - राजेश जाशी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2015, पृ. 79.
2. उर्वर प्रदेश - जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविताएँ 'सोनचिरइ' - जितेन्द्र श्रीवास्तव, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2010, पृ. 320.
3. रामचरितमानस - संत तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर.
4. लोकसाहित्य की भूमिका - डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 13.

----------00--------